अंक २१



संस्कृत-पाठ-माला।

(संस्कृत-भाषाका अध्ययन करनेका सुगम उपाय)

भाग २१ वाँ।

—o—

लेखक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर,

स्वाध्याय-मंडल, पारडी, (जि. सूरत)

—o—

तृतीय बार

—o—

संवत् २००६, शके १८७१, सन १९४९

मूल्य ८ आने

निरुक्ति ।



वेदमंत्रोंका मनन करनेके समय वैदिक शब्दों की निरुक्ति जाननेकी आवश्यकता होती है। यह निरुक्तिका विषय अब इसके आगे बताना है। यदि पाठक इन स्थानोंमें दिये हुए नियम और उदाहरण मननपूर्वक पढेंगे तो उनको वैदिक शब्दोंकी निरुक्तिका उत्तम ज्ञान हो सकता है । इसलिये आशा है कि पाठक इस सुगम पाठविधिसे लाभ उठावेंगे ।

स्वाध्याय-मण्डल
' आनंदाश्रम '
पारडी (जि० सूरत)

लेखक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
अध्यक्ष— स्वाध्याय-मंडल

मुद्रक तथा प्रकाशक– व. श्री. सातवलेकर, बी. ए.
भारत–मुद्रणालय ' आनंदाश्रम ' पारडी [जि० सूरत]



संस्कृत-पाठ-माला ।

भाग २१ वाँ

पाठ १

शब्दोंकी निरुक्ति ।

वैदिक पदोंकी निरुक्ति करनेके लिये वह पद किस धातुसे बना है यह जाननेकी आवश्यकता है। धातुके अक्षरोंकी समानता पदमें देखनेसे प्रायः पता लग सकता है कि यह शब्द इस धातुसे बना है । जैसा-- "गौ" शब्द लीजिये । इसमें "ग" अक्षर है और वह "गम्" धातुमें है, इसलिये अनुमान हो सकता है कि यह पद 'गम्' धातुसे हुआ है । दूसरा गति अर्थवाला "गा" धातु भी इसमें हो सकता है ।

इसलिये "गच्छति इति गौः" ऐसा गोपदका निर्वचन करते हैं । "जो गतिमान् है" यह इसका अर्थ है, इस पदके अर्थ गाय, वाणी, भूमि, सूर्य-किरणें, सूर्य, चन्द्र, इंद्रियां आदि अनेक वेदमें आते हैं, सबमें भिन्न भिन्न प्रकारकी गति होती ही है । उदाहरण देखिये—

*

आयं गौः पृश्निरक्रमीत्। (ऋग्वेद १०।१८९।१)

"(आयं) यह (गौः) भूमि (पृश्निः) अंतरिक्षमें (अक्रमीत्) जाती है।" इस मंत्रमें 'गौ' शब्द पृथ्वीवाचक है और वह पृथ्वीकी गतिका सूचक है। तथा

मया गावो गोपतिना सचध्वमयं वो गोष्ठ
इह पोषयिष्णुः ॥ (ऋग्वेद ३।१४।६)

"हे (गावः) गौवो ! (मया गोपतिना) मुझ गोपालके साथ (सचध्वं) मिलकर रहो, (इह अयं) यहां यह (पोषयिष्णुः) पालन करनेवाली (वः गोष्ठः) तुम्हारी गोशाला है।" यहां गौ शब्द (अर्थात् गावः शब्द) गाय-का वाचक है, परंतु अलंकारसे इन्द्रियवाचक भी होना संभव है।

इस प्रकार अन्यान्य अर्थोंके उदाहरण वेदमें अनेक मिल सकते हैं।

वेदमें कईवार " अंशके लिये पूर्णका प्रयोग " किया जाता है। अर्थात् "गौ" शब्दका प्रयोग गौसे उत्पन्न होनेवाले किसी भी पदार्थके लिये होता है। यह विषय बडा गहन है तथापि संक्षेपसे यहां देखिए—

'गौ' शब्द "गायके दूध" के लिये निम्नलिखित मंत्रमें है, देखिये-

गोभिः श्रीणित मत्सरम् ॥ (ऋ. ९।४६।४)

"(गोभिः) गायके दूध के साथ (श्रीणीत) पकाओ (मत्सरं) सोमरस-को। " अर्थात् गायका दूध लेकर उसमें सोमरस डालो और दोनोंको साथ साथ पकाओ।

इसी मंत्रमें 'मत्सर' शब्द सोमरसका वाचक है, मत्सरका दूसरा अर्थ लोभ है, वह यहां अभीष्ट नहीं है। मत्सर शब्द 'मद्' (हर्षित होना) इस धातुसे बनता है।

उक्त प्रकार " गौ " शब्द, "गायका" दूध, दही, मक्खन, घी, चर्म, चर्मसे बनी रासियां " आदिके लिये प्रयुक्त होता है, क्योंकि ये सब पदार्थ गौसे, बनते हैं। देखिये इसके उदाहरण—

अंशुं दुहन्तो अध्यासते गवि । (ऋग्वेद १०।९४।९)

"(अंशुं) सोमका (दुहन्तः) रस निचोडनेवाले (गवि) चर्मपर (अध्यासते) बैठते हैं ।" यहां "गो" शब्दका अर्थ गोचर्म अथवा चर्म है । तथा और देखिये—

गोभिः सन्नद्धो असि वीळयस्व । (ऋग्वेद ६।४७।२६)

"(गोभिः) गोचर्म की रसियोंसे (सन्नद्धः) बंधा हुआ तू रथ है इससे (वीळयस्व) तू दृढ बनो" यहां गो शब्दका अर्थ चर्मसे बनी हुई रसी है ।

इसी प्रकार गो शब्दके अनेक अर्थ वेदमें होते हैं । गायसे जितने भी पदार्थ बनते हैं उन सबका वाचक एक 'गौ' शब्द है । धनुष्यकी डोरी चर्म की तांतसे बनती है, इसलिये इसका नाम भी 'गौ' है । इस प्रकार अनुसंधानसे जानना चाहिये ।

दो धातुसे बने शब्द ।

कई शब्द एक धातु से बनते हैं, उसी प्रकार कई शब्द दो अथवा अधिक धातुओंसे भी बनते हैं अथवा वैसे सिद्ध किये जा सकते हैं, देखिये— "हिरण्य" शब्द है, इसमें दो भागोंकी कल्पना हो सकती है । "हिर्+रण्य" इसमें "रण्य" पद "रमणीय" पदका संक्षिप्त रूप होगा, देखिये—

रमणीय, रम्णीय, रम्ण्य, रण्य इस ढंगसे यह "रण्य" पद रमणीय पदका संक्षिप्त रूप स्पष्ट प्रतीत होता है, इसलिये यह "रम्" धातुसे सिद्ध हुआ मानना योग्य है ।

"हि" अथवा "हिर्" पद "हृ" धातुसे होना संभवनीय है । हृदय शब्द का भाषामें "हिर्दय" भी कई लोग कहते हैं उसमें से "दय" हटाया जाय तो "हिर्" शेष रह जाता है । यह "हिर्—रण्य = हिरण्य"

शब्द इस प्रकार बना है। हृदय के लिये जो रमणीय लगता है वह हिरण्य है यह धन का नाम है। धन, दौलत, संपत्ति आदि हरएक मनुष्यके हृदयको रमणीय लगती है, इसलिये धनका यह नाम है।

" हृ " धातुका अर्थ हरण करना भी है, एक स्थानसे हरण करके जो दूसरे स्थानपर लिया जा सकता है वह हिरण्य होता है। धन एकके पाससे दूसरेके पास जाता रहता है इसलिये धन को हिरण्य कहते हैं, इसका उदाहरण देखिये—

हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुपह्वये ॥ (ऋ० १।२२।५)

" (हिरण्य-पाणिं) सुवर्ण के समान चमकदार हाथोंसे अर्थात् किरणोंसे युक्त (सवितारं) सूर्य की अपनी (ऊतये) रक्षा होनेके लिये (उपह्वये) प्रार्थना करते है। " यहां ' हिरण्य ' शब्द धनरूपी सुवर्ण के समान चमकदार इस अर्थमें प्रयुक्त है। इस प्रकार पाठक शब्दों की व्युत्पत्ति जानें।

(रात्रीः शं प्रतिधीयतां) रात्री का समय हम सबके लिये कल्याण को धारण करे। (अवोभिः) सब प्रकारके रक्षणोंके साथ (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवान् और तेजस्वी (नः शं भवतां) हम सबके लिये कल्याणकारक हों। (रातहव्यौ) अन्न देनेवाले (इन्द्रावरुणौ) ऐश्वर्यवान् और श्रेष्ठ (नः शं) हम सबका कल्याण करें। (इंद्रापूषणौ) ऐश्वर्यवान् और पोषणकर्ता (वाजसातौ) अन्नके दानके समय (नः शं) हम सबका कल्याणकारी हों। (इन्द्रासोमौ) ऐश्वर्यवान् और विद्वान् (सुविताय) उत्तम गति के लिये और (शंयोः) शांति सुख और दुःख प्रतिकारके लिये सहायक बनें। अर्थात् हरएक समय और हरएक शक्ति हम सब के लिये लाभदायक बने।

अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम्।
शतं भवास्यूतिभिः॥ (ऋ. ४।३१।३)

हे ईश्वर! तू (नः) हम सबका, (सखीनां) सब मित्रजनोंका और (जरितॄणां) सब उपासकोंका (शतं ऊतिभिः) सैकडों रक्षणोंके द्वारा (अभि सु अविता) सब प्रकार से उत्तम रक्षक (भवासि) होता है।

हम सबका, मित्रों और उपासकों का तू सैकडों प्रकारों से अत्यंत उत्तम रक्षण करता है। प्रभो! तुम्हारे जैसा दूसरा कोई भी रक्षक नहीं है। तेरे रक्षाके साधन अनंत हैं और रक्षाके मार्ग भी अनंत हैं।

अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः।
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयिं दाः॥ (ऋ. ५।२४।१)

हे (अग्ने) तेजस्वी ईश्वर! (नः त्वं अन्तमः) हमारे लिये तूही समीप हो। इसलिये तू हमारा (त्राता) रक्षक (शिवः) कल्याणकर्ता और (वरूथ्यः) श्रेष्ठ हो। तू (अग्निः) तेजस्वी (वसुः) सबका निवासक (वसुश्रवाः) निवास करनेके योग्य अन्नादि देनेवाला (अच्छा नक्षि) हमें उत्तम प्रकार प्राप्त हो। और हमें (द्युमत्तमं) उत्तम तेजस्वी (रयिं दाः) धन दो।

परमेश्वर ही हम सबको अत्यंत समीप है। उससे अधिक समीप और कोई नहीं है, वही सबका रक्षक, कल्याण करनेवाला और सबको श्रेष्ठ प्राप्तव्य है। वही सबकी सुरक्षा करता है और सबका पोषण करता है। वह हम सबको प्राप्त हो और हमें उत्तम धन देवें।

त्वां वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां त्वा राय उभयासो जनानाम्।
त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन्मानुषाणाम् ॥
(ऋ. ६।१।५)

हे ईश्वर! (क्षितयः) पृथ्वीपर रहनेवाले मनुष्य (त्वां वर्धन्ति) तुझे बढाते हैं, तेरी महिमा फैलाते हैं। (जनानां) मनुष्योंके (उभयासः रायः) दोनों प्रकारके धन भी तेरी महिमा प्रकाशित करते हैं। तुमही (त्राता) सबका तारक हो और (तरणे चेत्यः) दुःखसे तैर जानेके लिये (भूः) योग्य हो तथा तुमही (मनुष्याणां) मनुष्योंका पिता माता आदि (सदं इत्) सदाही तुम ही हो।

हे ईश्वर ! सब ज्ञानी जन तेरी महिमा फैला रहे हैं, सब लोगों को स्थूल सूक्ष्म धन तूही देता है। सबको दुःखसे पार होने के लिये तेरा ही ज्ञान प्राप्त करनेयोग्य है क्योंकि तूही सब मनुष्यका भाई, माता, पिता आदि संबंधी हो।

तं सध्रीचीरूतयो वृष्ण्यानि पौंस्यानि नियुतः सश्चुरिन्द्रम्।
समुद्रं न सिंधव उक्थशुष्मा उरुव्यचसं गिर आ विशन्ति॥
(ऋ० ६।३६।३)

(तं इन्द्रं) उस प्रभुके पास (ऊतयः सध्रीचीः) रक्षक शक्तियां रहती हैं तथा (वृष्ण्यानि पौंस्यानि) उत्साहवर्धक शक्तियां (नियुतः) साथ साथ नियुक्त होकर (सश्चुः) सेवा करती हैं। (सिंधवः समुद्रं न) नदियां जिस रीतिसे समुद्रको प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार (उक्थशुष्मा गिरः) बलसे युक्त स्तुतिप्रार्थनावाली वाणी (उरुव्यचसं) सर्वव्यापक ईश्वरके पास (आ विशन्ति) पहुंचती हैं।

परमात्माके पास सब प्रकारका संरक्षक सामर्थ्य है, अनंत बल भी वहांही है। हरएक मनुष्य अपनी वाणीसे उसीकी प्रार्थना करता है अथवा हरएक मनुष्यको उसी की प्रार्थना करना चाहिये। किसी भी भाषाद्वारा और कहीं भी रहकर की हुई प्रार्थना पूर्ण रीतिसे उसीके पास पहुंचती है।

सूचना।

इस पाठमें आये हुए देवताओंके अनेक नाम एकही ईश्वरके वाचक होते हैं। उस देवताका बोध करते हुए एक अद्वितीय परमेश्वरके वाचक होते हैं क्योंकि "एकही सद्वस्तुका वर्णन ज्ञानी लोग अनेक नामोंसे करते हैं" यह वेदके मंत्रद्वारा ही स्पष्ट किया गया है।

पाठ ३

शब्दोंकी निरुक्ति।

(१)

"समुद्र" शब्दमें "सं+उत्+द्र" ये तीन विभाग हैं। इनका अर्थ-(सं) मिलकर (उत्) ऊपर (द्रु) गति करना है। जल के अणु परस्पर मिलकर एकरूप होकर ऊपर उठने के लिये गति करते हैं। जिन लोगोंने समुद्र देखा होगा उनको समुद्रकी इस गतिका ज्ञान हो सकता है। समुद्र का जल स्थिर नहीं होता परंतु लहरोंके द्वारा सदा हिलता रहता है यही अर्थ इस शब्दमें है। यहां 'सं उत्' ये दो उपसर्ग हैं और 'द्रु' धातु है जिसका अर्थ गति है।

इसीकी दूसरी व्युत्पत्ति "सं+मुद्+रं" है, इसमें (सं) एक होकर (मुद्) आनंद (र) देता है। समुद्रमें जलके अणु आपस में मिलकर देखनेवाले को आनंद देते हैं। यहां समुद्र शब्द 'सं' उपसर्गपूर्वक "मुद्" (आनंदित होना) धातुसे बना है।

इसकी तीसरी व्युत्पत्ति " सं+उन्द " (भिगोना) इस धातुसे की जाती है इसका अर्थ (सं) उत्तम रीतिसे (उनत्ति) जो भिगोता है। समुद्र सबको भिगो सकता है या भिगोता है; क्योंकि उसमें अपरंपार जल होनेसे भिगोनेका कार्य करनेमें वह समर्थ है। उदाहरण—

समुद्रमव जग्मुरापः ॥ (ऋ० १।३२।२)

" (आपः) जल (समुद्रं) जलनिधिके प्रति (अव जग्मुः) पहुंचे। "

(२)

आदित्य शब्द " आ+दा " (लेना, स्वीकार करना) इस धातुसे बनता है " आदत्ते इति आदित्यः " (जो लेता है वह आदित्य है)। आदान अर्थात् स्वीकार करनेका धर्म इसमें होता है। इसके विविध अर्थ देखिये—

१ आदत्ते रसान् = जलों अथवा रसोंका आदान करता है अर्थात् शोषण करता है। सूर्य जलादि रसका आकर्षण करता है।

२ आदत्ते भासं = तेजका आदान करता है, किसी भी दूसरे तेजस्वी पदार्थका तेज खींचता है, इसलिये उसकी प्रभा कम हो जाती है। इसका उदाहरण देखिये—

अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो
अदितये स्याम ॥ (ऋग्वेद १।२४।१५)

" हे (आदित्य) सूर्य! (अथ) अब (वयं) हम सब (तव व्रते) तेरे व्रतमें रहकर (अन्+आगसः) निष्पाप होते हुए (अ-दितये) अखंडित मुक्तिके लिये योग्य (स्याम) होंगे। "

(३)

" वृत्र " शब्द " वृ " धातुसे बनता है। आवरण करता है, घेरता है, चारों ओर से घेर लेता है, उसका नाम वृत्र है। प्रायः वेदमें यह शब्द मेघवाचक है क्योंकि वह आकाशमें आकर घेरता है, तथापि चारों ओरसे घेरनेवाला शत्रु, दुष्ट विकार आदि अनेक अर्थमें आता है, इसका उदाहरण यह है—

अपां बिलमपिहितं यदासीद्वृत्रं
जघन्वाँ अप तद्ववार ॥ (ऋ० १।३२।११)

"(यत्) जो (अपां बिलं) जलके निकलनेका द्वार (अपिहितं) ढका हुआ था उसको खोलनेके लिये (वृत्रं जघन्वान्) मेघको मारकर (तत् अपववार) उसे खोल दिया।" यहां मेघको मारकर जलके प्रवाह मुक्त करनेका वर्णन है। अर्थात् जब मेघ टूटा तब उसमें जो जल बंद था वह वृष्टिरूपसे प्रवाहित हुआ।

यहां अलंकारसे घेरनेवाले शत्रुका वध करके शत्रुके वधसे उसके रक्तकी नदियां बहानेका भी वर्णन है। परंतु यह अर्थ गुप्त है।

(४)

"रात्री" शब्द "रा" (दान करना) धातुसे बनता है। यह सुख अथवा विश्रामका दान करती है, सब प्राणिमात्र इस रात्रीमें विश्राम प्राप्त करते हैं। "रम्" धातुसे भी यह शब्द बनता है। "रमयति भूतानि" (प्राणियोंको रममाण करती है) वह रात्री है। इसका उदाहरण—

ह्वयामि रात्रीं जगतो निवेशनीं
ह्वयामि देवं सवितारमूतये ॥ (ऋग्वेद १।३५।१)

"(जगतः) जंगम जगत्के (निवेशनीं) निवेशक (रात्रीं) रात्रीकी (ह्वयामि) स्तुति करता हूं और (ऊतये) रक्षाके लिये (देवं सवितारं) सूर्य देवकी (ह्वयामि) स्तुति करता हू।" यहां रात्री शब्दका प्रयोग है और वह जगत्को विश्राम देनेवालीके अर्थमें है। 'जगत्' शब्दका यहां अर्थ चलनेवाले प्राणी है।

(५)

"अश्व" शब्द घोडेका वाचक है। यह "अश्" (भक्षण करना, खाना) इस अर्थमें धातु है। यह मार्गको खाता है (अध्वानं अश्नुते) इसलिये इसको अश्व कहते हैं। अथवा (अशनः) बडा खानेवाला होता है, बहुत खाकर हाजम करनेवाला घोडा ही होता है।

मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति । (ऋ० १।१६२।४)
"(मानुषाः) मनुष्य (अश्वं) घोडेको (परि नयन्ति) चारों ओर ले जाते हैं ।" अर्थात् घुमाते हैं । यहां अश्वपर चढकर चारों ओर घुमनेका वर्णन है ।

(६)

"मनुष्य" "शब्द मनन करके वसते हैं" अर्थात् मनन करके अपने कर्म करते हैं, इस प्रकार यह "मन्" धातुसे शब्द बनता है । अन्य प्राणी ऐसे मननशील नहीं होते जैसे मानव प्राणी होते हैं । "मनु" से बने हुए इस अर्थमें भी यह शब्द प्रयुक्त हो सकता है ।

(७)

"संग्राम" शब्द युद्धवाचक है, (सं) एक होकर (ग्राम) मेल होना इस अर्थका यह शब्द है अथवा (सं गतौ ग्रामौ) अर्थात् दो ग्रामके लोग परस्पर एक दूसरे के साथ भिड जाते हैं, लड पडते हैं उसका नाम संग्राम है । संग्राम यद्यपि युद्धवाचक है तथापि उसकी व्युत्पत्तिसे ऐसा प्रतीत होता है कि दो ग्रामोंके लोग आपस में झगडते हैं यह भाव इसमें स्पष्ट है ।

(८)

"वज्र" शब्द शस्त्र, तलवार, खड्ग आदि अर्थमें है । वर्जन अर्थके 'वर्ज्' धातुसे यह बनता है । (वर्जयति इति वज्रः) जो शत्रुका वर्जन करता है, जो शत्रुको दूर भगाता है उसका नाम वज्र है । हाथमें शस्त्र रहा तो शत्रुको दूर रखा जा सकता है ।

(९)

"आत्मा" शब्द "अत्" (सतत गमन करना) इस धातुसे बना है । इसमें सतत गति रहती है, चेतना हलचल करनेकी शक्ति इसीमें होती है, जड शरीरको यही हिलाता है, चलानेकी शक्ति इसमें रहती है

इसी लिये इसको आत्मा कहते हैं । इससे आत्माका अर्थ " संचालक " होता है ।

(१०)

वेदमें शब्द बननेके समय धातुके अक्षरोंमें उलटपुलट भी हो जाता है, जैसे — " हिंस् " (हिंसा करना) इस धातुसे " सिंह " शब्द बनता है जिसका अर्थ " हिंसक प्राणी " है । 'हिंस्' इस धातुके व्यंजन के स्थान बदले हैं और " सिंह " शब्द बना है ।

भाषामें भी चाकू के लिये "काचू" बिलकुलके लिये "कुलबिल" आदि अनेक शब्द इसी प्रकार आदि और अंतका स्थानविपर्यय होकर बने हैं । इसी प्रकार संस्कृत शब्दोंके बननेमें भी होता है । इस प्रकार अनुसंधान करनेसे कई शब्दोंमें इसी प्रकार का साधर्म्य दिखाई देगा ।

चाणक्य-सूत्राणि ।

१ न मृतस्यौषधं प्रयोजनम्-मरनेपर औषधका प्रयोजन क्या है ?

२ समकाले स्वयमपि प्रभुत्वस्य प्रयोजनं भवति--अनुकूल समय आनेपर स्वयं भी प्रभुत्वप्राप्तिके लिये कारण होता है अर्थात् स्वयं ऐश्वर्य प्राप्त करता है ।

३ नीचस्य विद्याः पापकर्मणि योजयन्ति-नीच मनुष्यकी विद्याएं उसको पाप करनेके लिये प्रवृत्त करती हैं ।

४ पयः पानमपि विषवर्धनं भुजंगस्य नामृतं स्यात्---दुग्धपान करनेपर भी सांपका विषही बढेगा, कदापि अमृत नहीं बनेगा ।

५ न हि धान्यसमो ह्यर्थः--धान्यसे समान ऐश्वर्य नहीं है ।



पाठ ४

इस पाठमें निम्नलिखित मंत्रोंका अध्ययन कीजिये ---

महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः ।
नास्य क्षीयन्त ऊतयः ॥ (ऋ० ३।४५।३)

(अस्य) इसके (महीः प्रणीतयः) पहुंचनेके मार्ग बडे हैं । इसकी (प्रशस्तयः) प्रशंसाएं (पूर्वीः) अपूर्व हैं । तथा इसकी (ऊतयः) रक्षाशक्तियां (न क्षीयन्ते) कभी क्षीण नहीं होती ।

इस प्रभुके बताये मार्ग अनन्त हैं जो निःसंदेह उन्नतिको पहुंचा देते हैं इसकी रक्षक शक्तियां भी अनंत हैं इसी लिये अनेक लोग अनेक प्रकारसे इसकी प्रशंसाएं करते हैं ।

यं मर्त्यः पुरुस्पृहं विदद्विश्वस्य धायसे ।
प्र स्वादनं पितूनामस्ततातिं चिदायवे ॥ (ऋ. ५।७।६)

(मर्त्यः) मर्त्य मनुष्य (यं) जिस ईश्वरको (पुरुस्पृहं) अत्यंत प्रशंसनीय (विश्वस्य धायसे) सब विश्वका धारण करनेवाला (पितूनां प्रस्वादनं) अन्नोंको मीठा बनानेवाला तथा (आयवे) मनुष्य मात्रके लिये (अस्ततातिं) गृहके समान आश्रयरूप (विदत्) जानता है ।

मनुष्य उस ईश्वरको उपास्य, जगत्‌का धारक, अन्नको रुचि अर्थात् उत्तम स्वाद देनेवाला और मनुष्योंका एकमात्र आश्रय जानकर उसकी उत्तम उपासना करे और उस ईश्वरको अपने अंदर ऐसाही अनुभव करे अथवा मननसे उसके उक्त गुण जाननेका यत्न करे ।

स वज्रभृद्दस्युहा भीम उग्रः सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा ।
चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥
(ऋ० १।१००।१२)

(सः) वह (मरुत्वान् इन्द्रः) प्राणशक्तिसे युक्त प्रभु (वज्रभृत्)

शस्त्रधारी, (दस्युहा) शत्रुका नाश करनेवाला, (भीमः) भयंकर उग्र, (सहस्त्र-चेताः) सहस्त्रों प्रकारके ज्ञानोंसे युक्त, (शतनीथः) बहुत प्रकारसे जगत्‌को चलानेवाला, (ऋभ्वा) प्रकाशमान (चम्रीषः न) रसयुक्तके समान सर्वत्र एकरस, (शवसा) बलसे (पांचजन्यः) पंचजनोंका हितकर्ता प्रभु (नः ऊती भवतु) हम सबका रक्षक होवे।

उक्त प्रकार विविध शक्तियोंसे युक्त प्रभुकी रक्षामें रहनेसें ही सब सुरक्षित रह सकते हैं।

सत्रा मदासस्तव विश्वजन्याः सत्रा रायोऽध ये पार्थिवासः।
सत्रा वाजानामभवो विभक्ता यद्देवेषु धारयथा असुर्यम् ॥
(ऋ. ६।३६।१)

"हे ईश्वर! (तव मदासः) तेरे आनंद (सत्रा विश्वजन्याः)सचमुच सब जनोंके हितकारी हैं, (अध) और (ये पार्थिवासः रायः) जो पृथ्वीपरके धन हैं, वे भी सबको लाभकारी हैं। तू (वाजानां विभक्ता) तूं धनोंका विभाजक (सत्रा अभवः) सचमुच हुआ है और तू ही (देवेषु असुर्यं) प्राणोंका बल (धारयथाः) धारण करता है।

परमेश्वरके जो आत्मिक और अलौकिक आनंद हैं वे सचमुच सब लोगोंके हितकारी हैं। यही ईश्वर सबको यथायोग्य रीतिसे धनोंका विभाग करता है और वही सूर्यादि देवताओंमें उत्तम बल स्थापन करता है।

कविमग्निमुपस्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे।
देवममीवचातनम् ॥ (ऋ० १।१२।७)

"(अध्वरे) यज्ञ में सत्कर्म करनेके समय (अमीव-चातनं) रोग दूर करनेवाले (सत्य-धर्माणं) सत्य नियम पालन करनेवाले, (कविं) कवि (अग्निं देवं) तेजस्वी परमात्मदेव की ही (स्तुहि) प्रशंसा कर।

परमात्म देव आरोग्यदाता, सत्य नियमोंका पालक, कवि अर्थात् शब्दका प्रवर्तक और अत्यंत तेजस्वी है, इसीलिये वह स्तुति करनेयोग्य है। उसकी स्तुति करनेसे उपासकके अंदर तेजस्विता बढती है।

समानं नीळं वृषणो वसानाः सं जग्मिरे महिषा अर्वतीभिः।
ऋतस्य पदं कवयो नि पान्ति गुहा नामानि दधिरे पराणि॥
(ऋ. १०।५।२)

(वृषणः) बलवान् (महिषाः) बडी इच्छा धारण करनेवाले (अर्वतीभिः वसानाः) चालक शक्तिके साथ रहनेवाले सज्जन (समानं नीळं) समान एक आश्रयस्थानको (सं जग्मिरे) एक होकर पहुंचते हैं। (कवयः) ज्ञानी लोग (ऋतस्य पदं) सत्यके स्थानका (नि पान्ति) संरक्षण करते हैं और (गुहा) बुद्धिमें (पराणि नामानि) श्रेष्ठ नामोंको (दधिरे) धारण करते हैं।

श्रेष्ठ मनुष्य अपनी प्रबल इच्छाशक्तिके साथ उस एक ईश्वरके आश्रय-स्थानको प्राप्त होते हैं। ज्ञानी लोग सदा सत्यका ग्रहण और असत्यका त्याग करते हैं। इसलिये हरएक को बुद्धिमें सदा श्रेष्ठ विचार धारण करके अपने आपको श्रेष्ठ बनाना चाहिये।

ऋतस्य हि वर्तनयः सुजातमिषो वाजाय प्रदिवः सचन्ते।
अधीवासं रोदसी वावसाने घृतैरन्नैर्वावृधाते मधूनाम्॥
(ऋ.१०।५।४)

(ऋतस्य) सत्यके (प्र-दिवः वर्तनयः) अत्यंत तेजस्वी सनातन मार्ग (इषः वाजाय) मनकी इच्छा और अन्नके लिये (सचन्ते) सहाय करते हैं। (रोदसी) द्युलोक और पृथ्वी (सुजातं) उत्तम प्रसिद्ध (अधीवासं) सर्वव्यापकको (वावसाने) वसाते हैं। (घृतैः) घी और (मधूनां अन्नैः) माधुर्ययुक्त अन्नोंके द्वारा (वावृधाते) सबको पुष्ट करते हैं।

सनातन सत्य धर्ममार्गका आक्रमण करनेसे सब मनुष्योंके मनोगत पूर्ण होते हैं और इसी ढंगसे सब लोग बलवान् भी बन सकते हैं। क्योंकि प्रसिद्ध ईश्वर सर्वव्यापक है और वह सबको घी अन्न आदि द्वारा पुष्ट बनाता है, इसलिये उसकी उपासनासे सबको बल प्राप्त होता है।

असच्च सच्च परमे व्योमन्दक्षस्य जन्मन्नदितेरुपस्थे।
अग्निर्ह नः प्रथमजा ऋतस्य पूर्व आयुनि वृषभश्च धेनुः॥
(ऋ० १०।५।७)

(दक्षस्य जन्मन्) बलकी उत्पत्तिके समय (अ-दितेः) अविनाशी मूल प्रकृतिके (उपस्थे) समीपके स्थानपर (परमे व्योमन्) अत्यंत विस्तृत आकाशमें (सत् च) तीनों कालोंमें एक जैसा रहनेवाला अविकारी आत्मतत्त्व और (अ-सत् च) उस आत्मासे भिन्न पदार्थ ऐसे दो पदार्थ थे। इस (पूर्व आयुनि) पूर्व अवस्थामें (ह नः) निश्चयसे हम सबके अंदर (ऋतस्य प्रथमजाः) सत्य धर्मका पहिला प्रवर्तक (अग्निः) तेजस्वी ईश्वर प्रकाशित हुआ जिसके साथ (वृषभः) बलवान् आत्मा और (धेनुः) कामधेनु अर्थात् बुद्धि थी।

प्रकृति और ईश्वर अनादि कालसे हैं। ईश्वर प्रकृतिमें बलका संचार करता है। वही सत्य धर्मका पहिला प्रवर्तक है। बल और पोषण-शक्ति, बलवान् आत्मा और सुबुद्धि, ये सब परमेश्वरके साथ रहते हैं। अर्थात् परमेश्वरसे सबको बल प्राप्त होता है और परमात्मासे उत्तम बल प्राप्त होकर ही सब अपना कार्य योग्य रीतिसे करनेमें सफलता और सुफलता प्राप्त करते हैं।

यमोदनं प्रथमजा ऋतस्य प्रजापतिस्तपसा ब्रह्मणेऽपचत्।
यो लोकानां विधृतिर्नाभिरेषात्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम्॥
(अथर्व० ४।३५।१)

(ऋतस्य प्रथमजाः) सत्यके पहिले प्रवर्तक (प्रजापतिः)

प्रजापति परमेश्वरने (तपसा) अपने तेज के द्वारा (यं ओदनं) जिस सृष्टिरूपी चावल को (ब्रह्मणे अपचत्) ज्ञान के लिये अथवा ब्रह्मके लिये पकाया और (यः) जो (लोकानां विधृतिः) लोकोंका विशेष धारणकर्ता और जो सबके (नाभिः) मध्यमें विराजमान है, उसके (तेन ओदनेन) पकाये उस सृष्टिरूपी चावलोंसे हम (मृत्युं अतितराणि) मृत्युके पार होते हैं।

परमेश्वरने इस विश्व की हंडीमें सृष्टिरूपी अन्नका पाक किया है। इसके बननेके लिये उसने अपनीही उष्णता लगाई और अपने तेजसे यह अन्न उसने सिद्ध किया है। वह ईश्वर लोगोंका धारक और सब सृष्टिके मध्यमें वर्तमान है। उसके इस अन्नका सेवन करता हुआ और उससे बल प्राप्त करता हुआ मैं मृत्युके परे जाऊंगा।

सूचना—पाठक इस प्रकार मंत्रोंका अभ्यास और अर्थका मनन करें।

चाणक्य-सूत्राणि।

१ न क्षुधासमः शत्रुः— भूखके समान शत्रु नहीं है।

२ अकृतेर्नियता क्षुत्—कर्म न करनेवालेको क्षुधा निश्चित रूपसे कष्ट देगी।

३ नास्त्यभक्ष्यं क्षुधितस्य— भूखे मनुष्यके लिये कुछ भी अभक्ष्य नहीं है।

४ इन्द्रियाणि जरावशं कुर्वन्ति—इन्द्रियां मनुष्यको जीर्ण करती हैं।

५ सानुक्रोशं भर्तारं आजीवेत्—दयावान् स्वामीकी सेवा करके जीवितका निर्वाह करना योग्य है।

पाठ ५

शब्दानुकरणसे भी कई शब्द बनते हैं, जैसे– कौवा " काँ काँ " शब्द करता है, इसलिये उस कौवेका नाम संस्कृतमें " काक " हुआ है । यह केवल उस कौवेके शब्दका अनुकरण ही है । इसी प्रकार टिटिभ पक्षी " टिट् टिट् " ऐसा शब्द करता है, इसलिये उसका यह नाम हुआ है ।

औपमन्यव नामक वैय्याकरणाचार्यका मत है कि ये शब्द इस प्रकार केवल शब्दानुकरणसे नहीं बने हैं, परंतु इनका भी यौगिक अर्थ है। परंतु कई अन्य आचार्य ऐसे शब्दोंको केवल शब्दानुकरणही मानते हैं । इस विषयमें प्रायः सर्वसम्मत निरुक्तिके नियम ये हैं–

(१) जिन पदोंमें स्वर, धातु, प्रत्यय आदि स्पष्ट प्रतीत होते हों उनकी निरुक्ति व्याकरणोक्त रीतिसे ही करनी योग्य है। जैसा– दिव् (धातु)+अ (प्रत्यय)="देव" शब्द सिद्ध हुआ । यह स्पष्ट व्युत्पत्ति है ।

(२) जहां पूर्वोक्त प्रकार व्याकरणानुसार स्पष्ट रीतिसे शब्दकी व्युत्पत्ति नहीं दिखाई देती, वहां अर्थकी प्रधानता मानकर अर्थके अनुसार धातु आदिकी कल्पना करके पदकी निरुक्ति तथा अर्थ करना चाहिये। जैसा 'नि+गम्' धातुसे " निघण्टु " शब्द बनाया है, यहां स्पष्ट धातु नहीं है।

(३) जहां अर्थकी भी समानता नहीं है और धातु भी स्पष्ट नहीं दिखाई देता, वहां वर्ण की समानतासे योग्य धातुकी कल्पना करके अर्थ करना चाहिये–जैसा 'गम्' धातुसे " गौ " शब्द बनाया । यहां केवल " ग " अक्षर की ही समानता है, न इसमें 'गम्' धातु स्पष्ट है और न कोई अन्य धातु ।

अक्षर और वर्णकी समानतासे जो निर्वचन करनेका ढंग है, उस विषयमें निम्नलिखित नियम ध्यानमें रखनेयोग्य हैं ।

१ धातुके आदि अक्षरका अवशेष—जैसा " प्र+दा " धातुसे " त " प्रत्यय होकर ' प्रत्त ' रूप होता है। इसमें 'दा' धातुके आदि अक्षर 'द' का अवशेष " द्+त = त्त " हुआ है। वास्तविक ' प्रदात्त ' रूप होना चाहिये था परंतु वैसा नहीं होता। यह उदाहरण इस नियमका है।

२ आदि अक्षरका लोप-जैसा धातु " अस् " है उसके प्रथम अक्षरका लोप होकर " स्तः, सन्ति " आदि रूप बनते हैं।

३ कई पदोंमें धातुके अंत्य अक्षरका लोप होता है-जैसे ' गम् ' धातुसे त्वा प्रत्यय लगाकर " गत्वा " रूप होता है।

४ कई उपान्त्य या मध्याक्षरका लोप होता है जैसे-' गम् ' धातुसे " जगमतुः, " रूप होना चाहिये था, परंतु वैसा न होकर " जग्मतुः " होता है, यहां "गम्" धातुके मध्यम अ वर्णका लोप होता है, जिससे गम्का ग्म बना और जग्मतुः, जग्मुः आदि गम् धातुके रूप बने हैं।

५ कई पदोंमें उपान्त्य अक्षर की वृद्धि होती है। जैसे-"राजन्" शब्दका रूप " राजा " होता है, " दण्डिन् " शब्दका रूप दण्डी होता है। यहां अन्त्य न् का लोप हुआ और उपान्त्य " अ और इ " दीर्घ हुए।

६ कहीं किसी अक्षर का लोप हो जाता है। जैसे- " याच् " (याचना करना) इस धातुका वेदमें रूप " यामि " होता है और " याचामि " नहीं होता। बीचके " चा " अक्षरका लोप हुआ। " तत्वा यामि " (ऋ० १।२४।११) इस मंत्रमें यामि शब्द " याचामि " शब्दके लिये आया है।

७ कई शब्दोंमें दो वर्णोंका भी लोप हो जाता है जैसे-" त्रि+ऋच् "इससे " तृच् " बनता है, यहां त्रिके र्+इ अर्थात् " रि " का लोप होकर केवल " त्+ऋच् " मिलकर तृच् हुआ है।

८ किसी शब्दमें आदि अक्षरका विपर्यय होता है, जैसे—'द्युत्' धातुसे " द्योतिष् " शब्द बननेके स्थानपर 'ज्योतिष्' शब्द बनता है। 'हन्' धातुसे " घन " शब्द बनता है। 'भिद्' धातुसे 'बिन्दु' शब्द होता है।

९ किसी शब्दमें अक्षरोंके स्थानमें बदल हो जाता है अर्थात् आदि अक्षर अन्तमें और अन्त्य अक्षर आदिमें हो जाता है जैसे—'सृज्' धातुसे 'सर्जु' शब्द बनना चाहिये परंतु 'रज्जु' बनता है। सर्जुका 'रस्जु' बनकर रज्जु होता है। 'कस्' धातुसे कसिता बननेके स्थानपर 'सिकता' बनता है। 'कृत्' धातुसे कर्तु बननेके स्थानपर 'तर्कु' बनता है।

१० किसी शब्दमें अन्त्य अक्षरका विपर्यय हो जाता है, जैसे—'मिह्' धातुसे " मेघ, " वह् धातुसे " ओघ, " गाह् धातुसे " गाध " शब्द बनते हैं, यहां धातुके आन्तिम हकारके स्थानपर अन्य अक्षर हुआ है। इसी प्रकार वह् धातुसे " वधू " बनता है, मद् धातुसे मधु बनता है।

११ कहीं नया अक्षर बीचमें घुस जाता है, जैसे—अस् (क्षेपण) धातुसे " आस्थत् " बनता है। यहां बीचमें स्कार घुसा है। निवारण अर्थके वृ (वार) धातुसे द्वार बनता है इसमें दकार बीचमें घुसा है।

ये नियम पाठक ध्यानमें धारण करेंगे तो उनको शब्दोंकी सिद्धिके विषयमें उत्तम ज्ञान हो सकता है। क्योंकि इन नियमोंके अनुसार ही प्रायः सब शब्दोंकी व्युत्पत्ति सिद्ध की जाती है। पाठक इन नियमोंका खूब मनन करें और वैदिक शब्दोंमें इन नियमोंके कार्यका अनुभव करें। ये ऊपर साधारण नियम दिये हैं, परंतु और भी कुछ विशेष नियम हैं जिनमें धातुका रूप ही बदल जाता है। ऐसे नियम देखिये—

१२ संप्रसारण होता है। धातुके य, र, ल, व इन अक्षरोंके स्थानपर इ, ऋ, ऌ, उ होते हैं; इसका नाम संप्रसारण है—जैसे " यज् " धातुसे " इष्टि " शब्द होता है तथा " इष्टवान्, इष्ट्वा, इष्ट " आदि शब्द बनते हैं, यहां

यकारके स्थानमें इकार हुआ है। अव् धातुके वकारके स्थानपर ऊकार होकर " ऊति " शब्द रक्षा अर्थमें बनता है। प्रथु धातुसे " पृथ् " शब्द होता है। यहां रकारके स्थानपर ऋकार हुआ। इसी प्रकार म्रद् धातुसे " मृदु " शब्द हुआ है।

१३ दो शब्दोंके मेलसे कई शब्द बनते हैं जैसा वेदका 'पुरुष' शब्द है यद्यपि यह समास प्रतीत नहीं होता है, तथापि यह आरंभ में समास ही है देखिये- पुरुष, (पुर्-उष, पुर-वस, पुरि-वस, पुरि-उष्) अर्थात् जो पुरी नगरीमें वसता है, रहता है या सोता है वह पुरुष कहलाता है। यह शब्द " पुर वस " इन दो शब्दोंसे बना है, और वस् के वकारका उ बनकर " पुर+उष = पुरुष " ऐसा शब्द हुआ। इसका उदाहरण देखिये—

वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥
(तै. आ. १०।१०।३)

" वृक्षके समान स्तब्ध होकर (दिवि) द्युलोकमें (एकः) एक (तिष्ठति) रहता है (तेन पुरुषेण इदं सर्वं) उस आत्माने यह सब (पूर्णं) परिपूर्ण हुआ है। " इस मंत्रमें पुरुष शब्द आत्मा अर्थमें आया है। नगरनिवासी मनुष्य इस अर्थमें भी पुरुष शब्दका प्रयोग होता है। देहनिवासी यह भी इसका अर्थ है। इस प्रकार मर्यादा के न्यूनाधिक होनेसे पुरुष शब्दके अनेक अर्थ हो सकते हैं। अर्थात् शरीररूपी पुरीमें रहनेवाला जीवात्मा, नगररूपी पुरीमें रहनेवाला नागरिक मनुष्य, जगत् रूपी पुरीमें रहनेवाला परमात्मा इत्यादि अनेक प्रकारसे अनेक अर्थ "पुरुष" शब्द के होते हैं।

वेदके शब्दोंको क्षेत्रके अनुसार देखना होता है यह बात विशेष है। कई शब्द ऐसे हैं कि जो क्षेत्रके विस्तारसे भिन्न अर्थ बताते

है जैसा देखिये इन्द्र शब्द है, शरीरके क्षेत्रमें रहनेवाला जीवात्मा, राष्ट्रके क्षेत्रमें रहनेवाला राजा और जगत्के क्षेत्रमें रहनेवाला परमात्मा ये इसके अर्थ हैं। इसी प्रकार विचार करनेसे वेदका अर्थ करनेमें सहायता मिलती है।

—०—

पाठ ६

इस पाठमें निम्नलिखित मंत्रोंका अभ्यास कीजिये—

इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः।
बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः॥ (ऋ० १।१३।९)

(इळा) मातृभाषा, (सरस्वती) मातृसभ्यता और (मही) मातृभूमि ये (तिस्रः देवीः) तीन देवताएं (मयोभुवः) कल्याण करनेवाली हैं। इसलिये ये तीनों देवताएं (बर्हिः) अंतःकरणमें (अ-स्रिधः) न भूलते हुए (सीदन्तु) बैठें।

"इळा" शब्द भाषावाचक है, इळा और इडा ये दोनों शब्द "इल्" धातुसे बने हैं। इडा अथवा इळा शब्दके अर्थ बहुत हैं परंतु यहां भाषा अर्थ अपेक्षित है। अर्थ स्पष्ट होनेके लिये यहां पूर्वोक्त मंत्रके अर्थमें "मातृभाषा" ऐसा अर्थ लिया है। जो जिन लोगोंकी जन्मभाषा होती है वह उनकी मातृभाषा कही जाती है।

"सरस्वती" शब्दका मूल अर्थ (सरस्) प्रवाहसे युक्त है। अनादि प्रवाहसे गुरुशिष्यपरंपराद्वारा जो विद्याकी संस्कृति और सभ्यता आती है, उस प्रवाहमयी सभ्यताका नाम सरस्वती है।

" मही " शब्द भूमिका वाचक है अर्थात् इसका अर्थ यहां मातृभूमि ही अभीष्ट है।

ये तीनों देवियां हरएक मनुष्यके लिये उपासना करनेके योग्य हैं। इन तीन देवियोंके उपासक राष्ट्रके अन्दर जितने अधिक होंगे उतना राष्ट्रका अधिक अभ्युदय निःसंदेह होगा। इसलिये वेदका कहना है कि इन देवियोंके लिये योग्य स्थान हरएकके हृदयमें मिलना चाहिये। ये तीन देवियां कल्याण करनेवाली हैं इसलिये हरएक मनुष्य मनमें इनके विषयमें आदर धारण करें और इनके लिये अपना तन मन धन अर्पण करे।

तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तामिडा सरस्वती मही।
भारती गृणाना॥ (अथर्व० ५।२७।९)
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्त्विडा सरस्वती भारती। मही गृणाना॥
(वा० य० २७।१९)

(इडा) वाणी, (सरस्वती) विद्या और (मही भारती) भरणकर्त्री भूमि ये (तिस्रः देवीः) तीन देवतायें (गृणाना) प्रशंसित होती हुई (बर्हिः सदन्तां) मनके अंदर बैठे। अर्थात् इनके लिये मनके अंदर योग्य आदर का स्थान हो।

सरस्वती साधयन्ती धियं न इळा देवी भारती विश्वतूर्तिः।
तिस्रो देवीः स्वधया बर्हिरेदमच्छिद्रं यान्तु शरणं निषद्य॥
(ऋ० २।३।८)

(नः धियं साधयन्ती) हमारी बुद्धियोंका साधन करनेवाली (सरस्वती) विद्या, (इळा) मातृभाषा, तथा (विश्वतूर्तिः भारती) सबसे विशेष मातृभूमि ये (तिस्रः देवीः) तीन देवियां (स्व-धया) अपनी धारणा-शक्तिके साथ (इदं बर्हिः) यह यज्ञस्थान अर्थात् यह मन अपना (शरणं निषद्य) आश्रय देकर (अ—छिद्रं) दोषरहित रीतिसे (पान्तु) सुरक्षित करें।

विद्या, भाषा और मातृभूमि ये तीन देवियां बडी शक्तिशाली हैं। अपनी शक्तिसे हमें आश्रय देकर हमारेसे यह हमारा शत सांवत्सरिक यज्ञ पूर्ण करावें। अर्थात् हमारी पूर्ण आयुतक इन तीन देवियोंकी भक्ति हमारेसे होती रहे।

आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु॥
(ऋ० ७।२।८)

(भारतीभिः भारती) भारतीके अर्थात् भूमिकी उपरकी जनता के साथ मातृभूमि (देवैः मनुष्यैः इळा) दिव्य मनुष्योंके साथ मातृभाषा और (सारस्वतेभिः सरस्वती) विद्याभक्तोंके साथ विद्या देवी, ये तीनों देवियां (सजोषा) समान प्रीतिसे (अर्वाक्) हमारे पास आकर (बर्हिः) अन्तःकरणमें (सदन्तु) बैठें।

हरएक मनुष्यके अंदर इन तीन देवियोंके विषयमें भक्ति अवश्य रहनी चाहिये (१) सब देशबांधवोंके साथ मातृभूमि (२) मातृभाषा-भाषियोंके साथ मातृभाषा, (३) और समान सभ्यतावालोंके साथ मातृसभ्यता, ये तीन देवियां हैं, इनकी उपासना हरएक मनुष्यको करनी चाहिये।

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती।
यज्ञं वष्टु धियावसुः॥ (ऋ० १।३।४)

(पावका) पवित्र करनेवाली (धिया-वसुः) बुद्धिके साथ रहनेवाली, (वाजेभिः वाजिनीवती) अनेक बलोंसे बलवती यह (सरस्-वती) सरस्वती देवी (नः) हमारे (यज्ञं) यज्ञकी (वष्टु) इच्छा करे। अर्थात् हमारे संपूर्ण कर्मोंमें विद्या विराजमान रहे।

सरस्वती विद्यादेवी मनुष्योंको पवित्र करनेवाली, बुद्धिके साथ रहकर कार्य करनेवाली और विविध शक्तियोंसे युक्त है। यह देवी

हमारी वाणीकी पूर्णता करनेवाली होवे।

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्।
यज्ञं दधे सरस्वती ॥ (ऋ० १।३।११)

यह (सरस्वती) विद्यादेवी (सूनृतानां) उत्तम भावनाओंकी (चोदयित्री) प्रेरक, (सुमतीनां चेतन्ती) उत्तम बुद्धियोंको चेतना देनेवाली है, वह हमारे वाणीके यज्ञको (दधे) धारण करे।

विद्यादेवीसे मनमें उत्तम शुभ भावनाओंका आविष्कार होता है, बुद्धिकी भी पवित्रता होती है, इसलिये इस विद्यादेवीसे हमारा वाग्यज्ञ पवित्र होवे।

महो अर्णः सरस्वती प्रचेतयति केतुना।
धियो विश्वा विराजति ॥ (ऋ० १।३।१२)

(सरस्वती) विद्यादेवी (महः अर्णः) महान् हलचल करनेवाले समुद्रके समान है, वह (केतुना) विज्ञानसे (प्रचेतयति) चेतना उत्पन्न करती है और (विश्वा धियः) सब बुद्धियोंको (विराजति) प्रकाशित करती है।

जिस प्रकार समुद्रमें सदा हलचल होती रहती है, उसी प्रकार विद्या भी जनतामें हलचल मचाती है। विद्यादेवीके सामर्थ्यका पार लगना कठिन है। जहां विद्याके संस्कार होते हैं वहां उन्नतिकी हलचल शुरू होती है। मानो विद्याही अपने ज्ञानद्वारा सबको चेतना और उत्साह देती है और सबकी बुद्धियोंको प्रकाशित करती है। अर्थात् विद्याके प्रकाशसे प्रकाशित हुई बुद्धियां ही विश्वका राज्य कर रही हैं।

प्र णो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती।
धीनामवित्र्यवतु ॥ (ऋ० ६।६१।४)

(वाजेभिः वाजिनीवती) अनेक बलोंसे बलयुक्त (सरस्वती) विद्यादेवी

(धीनां अवित्री) हमारी बुद्धियोंकी रक्षा करनेवाली (नः प्र अवतु) हम सबकी उत्तम रक्षा करे ।

विद्यासे अनंत बल प्राप्त होते हैं, और बुद्धियोंपर अनंत शुभ संस्कार भी होते हैं। इस प्रकार शुभ विद्यासे विद्वान्, बलवान् और सुबुद्धिमान् होकर हरएक मनुष्य अपना रक्षक बने और कभी परावलंबी न बने ।

त्वं देवि सरस्वत्यवा वाजेषु वाजिनि ।
रदा पूषेव नः सनिम् ॥ (ऋ० ६।६१।६)

हे (सरस्वति) विद्यादेवि! तू (वाजेषु) बलोंमें भी (वाजिनि) बलयुक्त है, इसलिये तू (अव) हमारी रक्षा कर। (पूषा इव) पोषकके समान (नः) हमारे लिये (सनिं रद) धनादि भोग दे ।

सरस्वती विद्यादेवीसे अनेकानेक धन प्राप्त होते हैं। विद्यासेही सुख-साधन बढते रहते हैं। तथा वैयक्तिक और सामुदायिक उन्नति भी विद्याके बढनेसे हो सकती है ।

यस्या अनन्तो अह्रुतस्त्वेषश्चरिष्णुरर्णवः ।
अमश्चरति रोरुवत् ॥ (ऋ० ६।६१।८)

(यस्याः) जिस विद्याका (अनन्तः) अंतरहित (अह्रुतः) अकुटिल सीधा, (चरिष्णुः) आगे बढनेवाला (अर्णवः) समुद्रके समान गंभीर (रोरुवत्) शब्दमय (त्वेषः) तेजस्वी (अमः) सामर्थ्य (चरति) फैल रहा रहै ।

इस जगत्में विद्याका वेग ऐसा बढ रहा है कि उसका कोई अंत नहीं है, जो सीधा बढनेवाला, गंभीर, तेजस्वी और बडा प्रभावशाली है। इसलिये इस विद्याके वेगको अपने अनुकूल बनाना, तथा स्वयं उस ज्ञानके वेगसे वेगवान् बनना चाहिये ।

सूचना—पाठक विद्याप्रशंसाके ये मंत्र पढें, अर्थका मनन करें और उसपर बहुत विचार करें ।

पाठ ७

दूध वाचक " पयः " शब्द है, इसका जल यह भी एक अर्थ है। यह शब्द " पा (पीना)" इस धातुसे बनता है । (पीयते तत् पयः) जो पीया जाता है उसका नाम " पयः " (दूध वा जल) है।

दूधका दूसरा संस्कृत नाम " क्षीर " है, यह शब्द " क्षर् " (झरना, छरना) इस धातुसे बनता है, जो (क्षरति) अर्थात् स्तनसे झरता है, चूता है, उसको " क्षीर " अर्थात् दूध कहते हैं।

" अंशु " नाम सोमका है। सोमवल्लि या विशेषतः सोमरसका यह नाम है। यह शब्द " अश् + शं " इन दो शब्दोंसे बनाया जाता है (अशनाय शं भवति) अशन अर्थात् खानेके लिये शं अर्थात् हितकारी होता है। इसका उदाहरण यह है—

अंशुं दुहन्तो अध्यासते गवि ॥ (ऋ० १०।९४।९)

"(अंशुं) सोमका (दुहन्तः) रस निकालनेवाले (गवि) चर्मपर (अध्यासते) बैठते हैं।" यहां अंशु शब्दका प्रयोग सोम अर्थमें किया है। भक्षण करनेसे आनंद देनेवाला इस अर्थमें यह शब्द यहां है।

चर्म शब्द " चर " (चलना) धातुसे बनता है, शरीरके संपूर्ण बाह्य भागपर यह चलता है, जाता है या फैलता है।

वृक्ष शब्द " व्रश्च " (छेदन करना) इस धातुसे बना है। जो छेदा जाता है अथवा जिससे शत्रुको छेदा जाता है इस अर्थमें यह शब्द बनत है। पहिले अर्थमें वृक्ष अर्थ और दूसरे अर्थमें लकडीसे बननेवाला धनुष्य अर्थ है। इस दूसरे अर्थका उदाहरण देखिये—

वृक्षेवृक्षे नियता मीमयद्गौस्ततो वयः प्र पतान्पूरुषादः ॥

(ऋ० १०।२७।२२)

"(वृक्षेवृक्षे) प्रत्येक धनुष्यपर (नियता) चढाई या तनी हुई

(गौः) चर्मसे बनी डोरी (अमीमयत्) शब्द करती है और (पूरुषादः) मनुष्यको खानेवाले (वयः) पक्षियोंके सदृश बाणोंको (प्रपतान्) फेंकती है ''

यहां तीन शब्द मनन करनेयोग्य हैं—

१ वृक्ष - लकडीसे बना धनुष्य
२ गौ - गोचर्मसे बनी धनुष्यकी डोरी
३ वयः— पक्षियोंके पंख लगे बाण

यहां मूल शब्दही उससे बने हुए पदार्थके लिये प्रयुक्त हुआ है। वृक्ष शब्द खटिया, मंचक, मेज इस अर्थमें भी वेदमें प्रयुक्त है क्योंकि वृक्षकी लकडीसे ये पदार्थ बनते हैं। वेदकी यह विशेषता पाठकोंको ध्यानमें धारण करनी चाहिये। अंशके लिये पूर्णका प्रयोग वेदमें बहुत स्थानपर होता है और उसके ये उत्तम उदाहरण हैं। बाणपर पक्षियोंके पंख लगते हैं इसलिये पक्षियोंका एक अंग बाणोंपर लगता है, इस कारण बाणोंके लिये पक्षिवाचक शब्दका प्रयोग होता है। इसी प्रकार गोचर्मसे धनुष्यकी ज्या (डोरी) बनती है, इसलिये ज्याके लिये गो शब्दका प्रयोग होता है, दूध गौसे मिलता है इसलिये दूधके लिये गो शब्दका उपयोग होता है। इसी प्रकार पाठक विचार करके जानें।

' निर्ऋति ' शब्द पृथ्वीका वाचक है क्योंकि यह (नि+रम् = निरमयति) मनुष्यादि प्राणियोंको वारंवार रममाण करती है, इससे प्राप्त होनेवाले फलों या फूलोंमें प्राणिमात्र रममाण होते हैं।

' निर्ऋति ' शब्दका दूसरा अर्थ ' कष्ट, दुर्गति, बुरी अवस्था ' आदि प्रकार होता है। यह शब्द उपरोक्त शब्द भिन्न शब्दसे है। यह शब्द 'निर् + ऋच्छ् ' (कष्ट प्राप्त होना) इस धातुसे बनता है। पाठक यहां देखें कि यद्यपि ये दोनों शब्द एक जैसे दीखते हैं, तथापि इनके बननेमें कितना अंतर है और इनके अर्थमें भी कितना भेद है। वस्तुतः ये दो शब्द एक दूसरेसे भिन्नही हैं।

'अन्तरिक्ष' शब्द मध्य, अवकाश, अंतरिक्ष-लोकका वाचक है। (अंतरि) बीचमें (क्ष) निवास देनेवाला। 'क्षि' धातु निवास करनेके अर्थमें है। यह शब्द पृथ्वी और सूर्यके बीचके स्थानका वाचक है। यह लोक अपने अंदर (अंतरि) अनेक पदार्थोंको (क्ष) स्थान देता है, यह इसका अर्थ है ।

" शंतनु " शब्द " शं+ तनु " इन दो शब्दोंके योगसे बना है, (शं) सुखको जो (तनु) फैलाता है। " तन् " धातु फैलानेके अर्थमें है। इसका दूसरा भी अर्थ होता है, (शं) सुख है (तनु) शरीरमें जिसके अथवा शरीरसे जो सुखी है। इस रीतिसे शब्द सिद्ध करनेमें 'तन्' धातुसे यह शब्द नहीं बना, परंतु दो शब्दोंका समास हुआ है। पाठक पूर्व शब्द से इस शब्द की तुलना करें।

" पुरोहित " शब्दमें दो शब्द हैं। " पुरः+हितः " इसका अर्थ (पुरः) आगे अग्रभागमें (हितः) रखा हुआ। सब कार्यमें जिसको आगे रखा जाता है ।

" स्वः " शब्दके वेदमें अनेक अर्थ हैं, परंतु उसका " आदित्य " भी एक प्रधान अर्थ है। (सु+अर् = स्वर् = स्वः) ये दो शब्द इसमें हैं। (सु) उत्तम प्रकारकी (अर्) गतिसे युक्त होनेके कारण " स्वः " शब्द आदित्यवाचक होता है। इसी प्रकार शोभन गतिसे युक्त पदार्थोंका यह नाम हो सकता हैं । इसी प्रकार दूसरा अर्थ " सु+ईरणः " अर्थात् उत्तम प्रकारसे दूर करनेवाला। सूर्य अंधकारको दूर करता है, इसलिये उसका वाचक यह शब्द है।

" नाक " शब्द सूर्यवाचक है। नायक शब्दके मध्य यकार को उडानेसे "नाक" शब्द होता है अर्थात् यह नायक अर्थमें है। सूर्य अपनी ग्रहमाला का नायक होनेसे इसका यह नाम है। इसका दूसरा अर्थ " न+अ+क " इस प्रकार व्युत्पत्तिसे बनता है। क शब्द सुखवाचक है। अक शब्द दुखवाचक बना, फिर उसका नकारने निषेध किया, इससे न+अक (नाक) शब्द

सुखवाचक बना। यह सूर्य सबके सुखका हेतु है, इसलिये इसका यह नाम है।

" दिशा " शब्द " दिश् " धातुसे बना है, दिशा बतानेका भाव इसमें है। " काष्ठा " शब्द भी दिशावाचक है, (क्रान्त्वा स्थिताः) उलांघकर ठहरती है, जितना भी आगे देखा जाय उतनी आगे भी वही दिशा रहती ही है, सब मर्यादाको उलांघकर वह रहती है इसलिये उसका यह नाम है।

सूर्यका भी नाम " काष्ठा " है इसलिये कि वह सबको उलांघकर ठहरता है। इसी प्रकार अन्यान्य पदार्थोंका नाम काष्ठा होता है। जिनमें उक्त गुण होगा।

"शरीर" शब्द "शॄ" (नष्ट करना) इस धातुसे बनता है। शरीर नष्ट होता रहता है, क्षीण होता रहता है इस अर्थका यह धातु इसमें है।

" तमः " शब्द अंधकारवाचक है, यह अंधकार फैला हुआ होता है, इसलिये " तन् " (फैलना) इस धातुसे यह शब्द बनता है। यह एकदम सर्वत्र फैल जाता है।

" दास " शब्द " " दस " (क्षयको प्राप्त होना) इस धातुसे बनता है। जो दुष्ट कर्मोंद्वारा अपना नाश करता है वह दास शब्दद्वारा बोधित होता है। गुलाम, हीन, दस्यु आदि जो हीन कर्ममें रमता है और अपने हीन कर्मोंद्वारा अपना नाश करता है उसका नाम दास है।

सूचना।

पाठक इस प्रकार वैदिक शब्दोंके अर्थ देखें और उनकी व्युत्पत्ति करनेका विधि जानें। इस पुस्तकमें कई शब्दोंकी व्युत्पत्तियां और निरुक्तियां दी हैं, इनका विचारपूर्वक मनन करनेसे पाठकोंको यह बात ज्ञात हो सकती है।

पाठ ८

इस पाठमें निम्नलिखित मंत्रोंका अध्ययन कीजिये–

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने।
सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त सरस्वती दाशुषे वार्यं दात्॥

(ऋ० १०।१७।७)

(देवयन्तः) देवता बननेकी इच्छा करनेवाले (सरस्वतीं) विद्यादेवीको (हवन्ते) बुलाते हैं, प्राप्त करते हैं । (अध्वरे तायमाने) यज्ञके फैलानेके समय (सरस्वतीं) विद्यादेवीकी उपासना होती है। (सु–कृतः) अच्छा कर्म करनेवाले (सरस्वतीं अह्वयन्त) विद्यादेवीको ही पुकारते हैं। यह सरस्वती अर्थात् विद्यादेवी (दाशुषे) दाताको (वार्यं दात्) सामर्थ्य देती है ।

उक्त अवस्थाओंमें विद्यादेवीकी उपासना लोग करते हैं। विद्यासे बल बढता है और उन्नति और पुरुषार्थ करना मनुष्यके लिये सुकर होता है। इसलिये हरएक मनुष्यको अपने अंदर विद्याका बल बढाना चाहिये। ज्ञानसे अपने सब सुखसाधन परिपूर्ण करने चाहिये।

मातृभूमिसूक्त। (अथर्व–१२।१)

" वैदिक धर्म " में राष्ट्रीय भावना और सार्वजानिक हितकी कल्पना प्रमुख होनेके कारण " मातृभूमिके " विषयमें अत्यन्त आदरका भाव होना स्वाभाविक ही है। अथर्ववेदमें एक " वैदिक राष्ट्रीय–गीत " अथवा " मातृभूमिका सूक्त " इसी मातृभूमि की भक्तिका द्योतक प्रसिद्ध है। सूक्त-कारोंने इसका विनियोग निम्नप्रकार किया है–

(१) ग्राम-पत्तनादि–रक्षणार्थं।

(२) पुष्टिकामः,…कृषिकामः…व्रीहियवान्नकामः,…पुत्रधनादिकामः,…मणिहिरण्यादिकामः,…पृथिवीमहाशांति–कामः…भूमिकामः,…पृथिवीं उपतिष्ठते।

(अथर्व० सा० भा०)

" (१) ग्राम, पत्तन, नगर, राष्ट्र आदिकी रक्षाके समय, तथा (२) पुष्टि, कृषि, धनधान्य आदिकी प्राप्तिके प्रयत्न करनेके समय, भूमिको प्राप्तिके लिये प्रयत्न करनेके समय, तथा मातृभूमिमें जिस समय अशांति होती है, उस समय देशमें पुनः शान्ति प्रस्थापित करनेके अवसरपर इस " भूमि—सूक्त " का पाठ किया जाता है ।

इसलिये हरएक वैदिक-धर्मीको इस सूक्तका अध्ययन तथा मनन करना आवश्यक है। इस सूक्तके कई मंत्र यहां दिये जाते हैं।

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥ १ ॥

(सत्यं) सत्य, (बृहत्) बल, (ऋतं) न्याय्य व्यवहार, (उग्रं) क्षात्र तेज, (दीक्षा) दक्षता, (तपः) द्वन्द्व सहन करनेकी शक्ति, (ब्रह्म) ज्ञान, (यज्ञः) सत्कार—संगति-दानात्मक शुभकर्म, ये आठ गुण (पृथिवीं) मातृभूमिका (धारयन्ति) धारण करते हैं ॥ (सा) वह (नः) हमारी (पृथ्वी) मातृभूमि, जो हमारे (भूतस्य) भूत और (भव्यस्य) भविष्य तथा वर्तमान अवस्थाकी (पत्नी) पालन करनेवाली है, वह (नः) हमारे लिये (उरुं लोकं) विस्तृत स्थान (कृणोतु) करे ॥

मातृभूमिकी स्वतंत्रताका संरक्षण जिन श्रेष्ठ सद्गुणोंसे होता है, वे आठ गुण ये हैं - (१) सत्यनिष्ठा, (२) बलसंवर्धन, (३) न्याय्य व्यवहार, (४) प्रबल क्षात्रतेज, (५) कर्तव्यदक्षता, (६) शीत उष्ण सहन करनेकी शक्ति, (७) ज्ञान - आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक—ज्ञान तथा विज्ञान, और (८) श्रेष्ठोंका सत्कार, आपसकी एकता और अनाथोंकी सहायता करनेके लिये आवश्यक कर्तव्यकर्म करना, इन गुणोंसे अर्थात् ये गुण जनतामें बढनेसे- मातृभूमिका धारण होता है। इन गुणोंसे जिस मातृभूमिका धारण हुआ है, ऐसी मातृभूमि वहांके लोगोंके भूत, भविष्य और वर्तमानकालीन

अवस्थाका संरक्षण करती है। और वहांके लोगोंको अपने देशमें जितना चाहिये उतना विस्तृत स्थान, अर्थात् फैलनेके लिये स्थान देती है। तात्पर्य यह है कि उक्त आठ गुणोंसे मातृभूमिकी स्वतंत्रताका संरक्षण हो और अपने देशमें हरएकको अपने विस्तारके लिये पर्याप्त विस्तृत क्षेत्र प्राप्त हो ॥ १ ॥

असंबाधं मध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु ।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः ॥२॥

(यस्याः) जिस मातृभूमिके (मानवानां) मननशील मनुष्योंके (मध्यतः) अन्दर (उत्-वतः) उच्चता और (प्र-वतः) नीचता तथा (समं) समता के विषयमें (बहु) बहुतही (अ-संबाधं) निर्वैरता है। और (या) जो (नानावीर्या ओषधीः) नाना प्रकारके वीर्योंसे युक्त औषधियोंको (बिभर्ति) धारण पोषण करती है, (नः पृथिवी) वह हमारी मातृभूमि (नः प्रथतां) हमारी कीर्तिका (राध्यतां) साधन होवे।

जिस हमारे राष्ट्रके विचारशील मनुष्योंमें परस्पर द्रोहभाव नहिं है प्रत्युत उनमें पूर्ण ऐक्यभाव है और उनमें उच्चता, नीचता और समताके विषयके कोई झगडे नहीं हैं। तथा जो हमारी मातभूमि विविध गुणोंसे युक्त अनन्त औषधिवनस्पतियोंको उपजाति है, वह हमारी मातृभूमि हमारे यशको फैलानेके लिये कारणीभूत हो ॥ २ ॥

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।
यस्यामिदं जिन्वाति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ॥३॥

(यस्यां) जिसमें समुद्र (उत) और (सिन्धुः) नदी तथा (आपः) जलाशय बहुत हैं और (यस्यां) जिसमें (कृष्टयः) खेतियां (अन्नं) अन्नकी (सं बभूवुः) उत्पत्ति करतीं हैं, (यस्यां) जिसपर (इदं प्राणत्) यह श्वास लेने और (एजत्) हलचल करनेवाला प्राणिजात (जिन्वति) चलता फिरता है, (सा) वह (भूमिः) हमारी मातृभूमि (नः) हमको (पूर्व-पेये) पूर्ण पेय अर्थात् समस्त खानपानके पदार्थ (दधातु) देवे।

*

जिस हमारी मातृभूमिमें समुद्र, नद, नदियां, तालाव, कूप, झील, झरने आदि बहुत हैं, उनके जलसे सब कृषीवल अनेक प्रकारकी खेतियां करके जहां विविध धान्यादि उत्पन्न करते हैं, तथा उस अन्न और पानका सेवन करके अनेक उत्तम उत्तम प्राणी जहां आनन्दसे रहते हैं, वह हमारी मातृभूमि उत्तम खानपान हमें देती रहे । अर्थात् ऐसा कभी न हो कि हमारी मातृभूमिसे उत्पन्न हुए अन्नसे दूसरे पुष्ट होते रहें और हमको खानेको कुछ भी न मिले ॥ ३ ॥

यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ॥४॥

(यस्याः पृथिव्याः) जिस मातृभूमिकी (चतस्रः प्रदिशः) चारों दिशाओंमें (कृष्टयः) विविध खेतियां (यस्यां) जिसमें (अन्नं) अन्नको (सं बभूवुः) उत्पन्न करती हैं और उससे (या) जो भूमि (एजत् प्राणत्) घूमनेवाले प्राणिमात्रको (बहु-धा) बहुत प्रकारसे (बिभर्ति) पुष्ट करती है (सा) वह (नो भूमिः) हमारी मातृभूमि हमें (गोषु) गौओंमें और (अन्ने अपि) अन्नमें भी (दधातु) रक्खे ॥

जिस हमारी मातृभूमिमें चारों दिशाओंमें खेतीसे विविध प्रकारका अन्न उत्पन्न होता है, जिसको खाकर सब प्राणिमात्र हृष्टपुष्ट होते हैं और आनंदसे जिसपर विचरते हैं, वह भूमि हमें विपुल अन्न और गौवें देनेवाली होवे । अर्थात् हम सदा अन्न और गौवोंके बीचमें मातृभूमिकी कृपासे रहें । ऐसा कभी न हो कि हमारी मातृभूमिकी गौवोंका दूध और कृषिसे उत्पन्न हुआ अन्न दूसरेही ले जांय और हम वंचित ही रहें ॥ ४ ॥

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन् ।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ॥ ५ ॥

(यस्यां) जिस मातृभूमिमें हमारे पूर्व प्राचीन (पूर्व-जनाः) पूर्वजोंने (वि-चक्रिरे) विविध कर्तव्य किये थे और (यस्यां) जिसमें (देवाः)

देवोंने (असुरान्) असुरोंको (अभ्यवर्तयन्) हराया था। तथा जो (गवां) गौओं, (अश्वानां) घोडों (च वयसः) और पक्षियोंका (वि-स्था) विशेष निवासस्थान है, वह (नः पृथिवी) हमारी मातृभूमि हमें (भगं) ऐश्वर्य और (वर्चः) तेज (दधातु) देवे।

जिस मातृभूमिमें हमारे प्राचीन पूर्वजोंने विविध प्रकारके पराक्रम किये थे, जिसमें सज्जनोंने दुष्टोंका पराभव किया था और जिसमें गौवें, घोडे तथा अन्य पशुपक्षी भी आनन्दसे रहते हैं, वह हमारी आश्रयदात्री मातृभूमि हमें ऐश्वर्य और तेज देनेवाली होवे ॥ ५ ॥

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु ॥६॥

(विश्वं-भरा) सबकी पोषण करनेवाली, (वसुधानी) रत्नोंकी खान, (प्रतिष्ठा) सबका आधार, (हिरण्यवक्षाः) जिसके अन्दर सुवर्ण है, (जगतः निवेशनी) प्राणियोंका निवास करानेवाली, (वैश्वा-नरं) सब मनुष्य-समूहरूप (अग्निं) अग्निको (बिभ्रती) धारण पोषण करनेवाली और (इन्द्र-ऋषभा) इन्द्रसे जिसपर वृष्टि होती है, ऐसी हमारी (भूमिः) मातृभूमि (नः) हमको (द्रविणे) धन और बलके बीचमें (दधातु) रक्खे ॥

जो हमारी मातृभूमि सब प्रकारके रत्न, सोना, चांदी आदिकी खान है, सब प्रकारके खानपान देकर जो सब प्राणियोंका पोषण कर रही है, मनुष्य-समुदायरूपी राष्ट्रीय अग्निको जो जगाती हैं और जहां स्वयं इन्द्रही वृष्टि करता है वह हमारी श्रेष्ठ मातृभूमि हमें सब प्रकारके धनोंके बीचमें रक्खे ॥ ६ ॥

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम्।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा॥ ७॥

(विश्व-दानीं) सब कुछ देनेवाली (यां पृथिवीं भूमिं) जिस विस्तृत मातृभूमिकी (अ-स्वप्नाः) सुस्ती न करनेवाले (देवाः) देवता लोग (अ-प्रमादं) प्रमादरहित होकर (रक्षन्ति) रक्षा करते हैं, (सा) वह (नः) हमको (प्रियं मधु) प्रिय मधु (दुहां) देती रहे (अथो) और (वर्चसा) तेजके साथ (उक्षतु) बढावे।

जिस हमारी मातृभूमिकी रक्षा ज्ञानी और शूर पुरुष प्रमादरहित होकर और सुस्तीको छोडकर करते आये हैं, वह हमें सब कुछ देनेवाली मातृभूमि सदा हमारे लिये मीठे मीठे पदार्थ देती रहे और हमारा तेज और बल बढाती रहे ॥७॥

चाणक्य-सूत्राणि।

१ लुब्धसेवी पावकेच्छया खद्योतं धमति—कंजूसकी सेवा करनेवाला अग्निकी इच्छासे जुगनुको फूंकता रहता है।

२ विशेषज्ञं स्वामिनं आश्रयेत्—विशेष ज्ञानी स्वामीका आश्रय करें।

३ पुरुषस्य मैथुनं जरा—मैथुनसे पुरुष वृद्ध होता है।

४ स्त्रीणां अमैथुनं जरा—मैथुन न करनेसे स्त्री वृद्ध होता है।

५ न नीचोत्तमयोः विवाहः— नीच और उत्तमका विवाह करना योग्य नहीं है।

६ अगम्यागमनादायुर्यशःपुण्यानि क्षीयन्ते—अयोग्य नीच स्त्रीके साथ समागम करनेसे आयु, यश और पुण्यका नाश होता है।

७ नास्त्यहङ्कारसमः शत्रुः —अहंकारके समान शत्रु नहीं।

८ संसदि शत्रुं न परिक्रोशेत्— सभामें शत्रुके विषयमें विशेष बोलना नहीं।

९ शत्रुव्यसनं श्रवणसुखम्— शत्रुके संकट सुननेके लिये सुखदायी होते हैं।

१० अधनस्य बुद्धिर्न विद्यते— धनहीनके पास बुद्धि नहीं रहती (ऐसा धनी मानते हैं और उसका निरादर करते हैं।)

पाठ ९

" पणि " शब्द बनियेका वाचक है, यह " पण् " (व्यवहार करना) इस धातुसे बनता है। " वणिक् " शब्द भी उसी पणि शब्दका ही रूप है। पणि–पणिक–बणिक–वणिक् इस प्रकार इसकी उत्पत्ति है। (पण्यं नेनेक्ति) बेचनेके पदार्थ नित्य ले जाता है। इसलिये उसको वणिक् कहते हैं।

" बिल " शब्दकी उत्पत्ति बडी विचित्र है। " भृ " (भरण करना) इस धातुसे " भर " शब्द बनता है। भर-भल—भिल—बिल इस प्रकार अंतमें बिल शब्द बना। भ अक्षरका ब बनता है और अकारका इ भी बनता है।

" कृष्ण " शब्द कृष धातुसे बना है। जिसमें कर्षण अथवा निकृष्टता होती है उस वर्णका नाम कृष्ण (काला) है।

" अहः " शब्द दिनवाचक है (उपाहन्ति अस्मिन् कर्माणि) इस दिन-में सब कर्म किये जाते हैं। अ+हर् शब्दमें यहां " आ+हृ " धातुकी कल्पना की है। इन दोनों शब्दोंके उदाहरणके लिये निम्नलिखित मंत्र देखिये—

अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च विवर्तेमे रजसी वेद्याभिः ॥

(ऋ० ६।९।१)

" (कृष्णं अहः च) काला दिन अर्थात् रात्री और (अर्जुनं अहः च) श्वेत दिन अर्थात् दिन ये दोनों (रजसी) शोभावाले (वेद्याभिः) ज्ञातव्य निज प्रकृतिके साथ (वि-वर्तेते) सदा विरुद्ध भावके साथ रहते हैं। " अर्थात् दिन और रात्री अपने विरुद्ध गुणोंसे युक्त हैं।

र और ल का अभेद होता है। वेदमें यह नियम बहुत स्थानोंमें दिखाई देता है जैसा मेघवाचक " उपर, उपल " ये शब्द लीजिये। र के स्थान-

वर ल हुआ है। वास्तवमें उपल शब्द पत्थरका वाचक है। मेघोंसे ओले (पत्थर जैसे) गिरते हैं इसालिये मेघोंकाही यह नाम हुआ। " उपर " शब्दमें 'उप+रम्' धातु है। जिसमें लोग रमते हैं, जिसकी शोभा देखकर जन रमते हैं उसका नाम " उपर " (मेघ) है।

'प्रथम' शब्दकी भी उत्पत्ति देखिये-प्रकृष्टतम-प्रतम-प्रथम इस प्रकार बीचके दो अक्षर लुप्त हो गये हैं और त के स्थानपर थ हुआ है।

'शुष्म' शब्द बलवाचक है, 'शुष्' (शोषण करना) इस धातुसे बनता है। बलसे शत्रुकी शक्ति शुष्क की जाती है।

'सानु' शब्द पर्वत शिखरका वाचक है, इसकी निरुक्ति ऐसी है। (सं+उत्+नुन्न) समुन्नुन्न = समुन्नु = सानु = सानु मूल शब्दका संक्षिप्तरूप इस प्रकार बना। समुन्नुन्न शब्दका अर्थ ' अत्यंत उच्च स्थान, ' यही सानु शब्दका अर्थ है।

" पर " शब्द 'पार' शब्दका ही रूप है, पर शब्दका अर्थ परला है।

"मुहूर्त" शब्द कालका वाचक है, इसकी उत्पत्ति " मुहुः+ऋतु " = मुहुर् ऋतु = मुहूर्त " यह है। ऋतुका अर्थ कालविभाग है, वारंवार होनेवाला कालविभाग मुहूर्त कहलाता है।

" काल " शब्द " कल् " (गतौ) धातुसे बनता है। यह समय सदा चल रहा है। इसलिये इसको 'काल' कहते हैं। कल् धातुका अर्थ नाश भी है। काल सबका संहार करता है इसलिये उसका यह नाम है।

" पाणि " शब्द हाथका वाचक है। 'पण्' धातु व्यवहार, काम-काज करना आदिका वाचक है। इससे पाणि शब्द बनता है। हाथसे काम-काज किया जाता है इसालिये यह नाम सार्थ है।

" पथ " पन्था " शब्द मार्गवाचक है, पत् अथवा पथ् धातुसे यह बनता है, पांवसे चला जाता है, एक स्थानसे दूसरे स्थानतक पहुंचाया जाता है, इसलिये इसका यह नाम हुआ है।

" अपत्य " शब्दमें (अ+पत्य) ये दो शब्द हैं । अपतन अर्थात् जिससे पतन नहीं होता, कुलका अधःपात जिससे नहीं होता, उसका नाम अपत्य अर्थात् संतान है ।

" दुहिता " शब्द पुत्रीका वाचक है । " दूरे+हिता " अर्थात् दूर रहनेपर हितकारी यह इसका आशय है । दूरे-हिता = दुर्हिता = दुहिता इस प्रकार इसकी निरुक्ति है ।

"श्मशान" शब्द प्रेतदाह करनेके स्थानका वाचक है । इसमें श्म+शान ये दो शब्द हैं । श्म शब्द शरीरवाचक और शान शब्द शयनवाचक है । जहां शरीर अंतमें शयन करता है उस स्थानका वाचक यह शब्द है ।

" श्मश्रु " शब्द बालोंका वाचक, दाढीमूंछका वाचक है । इसका अर्थ (श्म+श्रु) श्म अर्थात् शरीरमें श्रित अर्थात् जो आश्रित है, शरीरके आश्रयसे जो रहता है, उसका नाम श्मश्रु है ।

" लोम " शब्द बालका वाचक है । यह " लु " (काटना) इस धातुसे बना है । जो काटे जाते हैं उनका नाम लोम है ।

" जामि " शब्द बहिनका वाचक है, " जन् " (उत्पन्न करना) इस धातुसे यह शब्द बनता है । इसमें पति पुत्रको उत्पन्न करता है ।

" निषाद " शब्द पंचम वर्णका वाचक है, " नि+षद् " (नीचे बैठना) इस धातुसे इसकी उत्पत्ति है, यह सबसे नीचे बैठनेका अधिकारी है । आर्यधर्ममें पांच जन हैं, उनका वर्णन निम्नलिखित मंत्रमें पाठक देखें—

यत्पाञ्चजन्यया विशेन्द्रे घोषा असृक्षत ।
अस्तृणाद्बर्हणा विपोऽर्यो मानस्य स क्षयः । (ऋ० ८।६३।७)

(यत्) जो (पाञ्चजन्यया विशा) पांचों जनोंके समूहरूप प्रजासे (इन्द्रे) राजाके लिये (घोषः असृक्षत) शब्द निकलते हैं तब (सः विपः)

वह बुद्धिमान्, (अर्यः) समर्थ श्रेष्ठ, (मानस्य क्षयः) संमानका अधिष्ठाता राजा (बर्हणा अस्तृणात्) अपने सामर्थ्यसे शत्रुओंको दूर करता है।

इसमें पंचजनोंका वर्णन है और पंचजनोंकी शक्तिका भी वर्णन है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद ये पंचजन हैं। राजाके लिये इनकी सहायता मिलनी चाहिये। यह भाव उक्त मंत्रमें है।

" अन्न " शब्द " अद् " (खाना) इस धातुसे बना है। जो खाया जाता है उसका नाम अन्न है।

" बल " शब्द शक्तिका वाचक है। यह "भृ" (धारणपोषण करना) इस धातुसे बनता है। ' भृ ' धातुसे भर शब्द बनता है और उससे–भर–बर-बल इस प्रकार रूपान्तरको प्राप्त होता है।

" धन " शब्द द्रव्य अथवा संपत्तिका वाचक है। यह शब्द तर्पण अर्थवाली " धि ' अथवा ' धन् ' धातुसे बना है। जिससे तृप्ति होती है। जिससे धन्यता प्रतीत होती है उसका नाम धन है।

'क्षिप्र' शब्द शीघ्रताका वाचक है, इसका साम्य 'सं–क्षिप्त' शब्दके साथ है। समयको संक्षिप्त रूपमें लानेका नाम ही शीघ्रता करना है।

' बहु ' शब्द प्रसिद्ध है, वह ' प्रभु, शब्दके साथ संबंधित है। प्रभु-पभु-पहु-बहु इस प्रकार यह शब्द बन गया।

' गृह ' शब्द घरका वाचक है, यह ' ग्रह ' (लेना) धातुसे बना है। (गृह्णाति इति गृहं) जो कुटुंबियोंको लेता है उसका नाम घर है।

' सुख ' शब्द सब जानते ही हैं। (सु) उत्तम प्रकारसे (खं) इंद्रिय जिससे रहता है, जिससे इंद्रियोंको आराम होता है। उसका नाम सुख है।

सूचना

इस प्रकार पाठक शब्दोंकी व्युत्पत्तियां देखें और अनुभव करें कि यौगिक अर्थ इस रीतिसे देखे जाते हैं।

—o—

पाठ १०

याऽर्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद्यां मायाभिरन्वचरन्मनीषिणः।
यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः।
सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ॥ ८ ॥

(अग्रे) प्रारंभमें (या) जो (अर्णवे) समुद्रके (अधि) ऊपर (सलिलं) जलरूप (आसीत्) थी। और (मनीषिणः) बुद्धिमान् लोग (मायाभिः) बुद्धि और कुशलता आदिसे (यां) जिसकी (अन्वचरन्) सेवा करते आये हैं (यस्याः पृथिव्याः हृदयं) जिस पृथ्वीका हृदय (परमे व्योमन्) बडे आकाशमें (सत्येन आवृतम्) सत्यसे आवृत होनेके कारण (अ-मृतं) अमृतरूप है। (सा) वह (नः) हमारी (भूमिः) मातृभूमि हमारे (उत्तमे राष्ट्रे) उत्तम राष्ट्रमें (त्विषिं) तेज और (बलं) बल (दधातु) धारण करे ॥

प्रारंभमें जो समुद्रके बीचमें थी, जिसका बीचका भाग भी सत्य आत्मासे व्याप्त है, ज्ञानी लोग बुद्धिसे और कुशलतासे जिसकी सेवा करते आये हैं, वह मातृभूमि हमारे श्रेष्ठ राष्ट्रमें उत्तम तेजस्विता और बलकी वृद्धि करे ॥८॥

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥ ९ ॥

(यस्यां) जिसमें (परि-चराः) मातृभूमिकी सेवा करनेवाले स्वयंसेवक (समानीः आपः) जलके समान शांतिसे और समानभावसे (अहोरात्रे दिनरात (अ-प्रमादं) प्रमादरहित होकर (क्षरन्ति) चलते हैं। (सा) वह (भूरि-धारा) अनेक धारण शक्तियोंसे युक्त (नः भूमिः) हमारी मातृभूमि, हमें (पयः दुहां) दूध और अन्न देवे (अथो) तथा (वर्चसा) तेजके साथ (उक्षतु) बढावे।

जिस मातृभूमिकी सेवा, उत्तम स्वयंसेवक शांति और समान भावनासे युक्त तथा प्रमादरहित होकर दिनरात करते हैं, वह हमारी मातृभूमि हमें उत्तम भक्ष्य, भोज्य और पौष्टिक पेय देवे और हमारे तेजकी वृद्धि करे ॥९॥

यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे ।
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतीः ।
सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः ॥ १० ॥

(यां) जिसको (अश्विनौ) अश्विनी-देवोंने (अमिमातां) मापा है (यस्यां) जिसमें (विष्णुः) विष्णुने (वि-चक्रमे) पराक्रम किया था, (शचीपतिः इन्द्रः) प्रज्ञाशील इन्द्रने (यां) जिसको (अनू-अमित्रां) शत्रुरहित (चक्रे) किया था। (सा) वह (नः) हमारी (माता भूमिः) मातृभूमि हमारे लिये भोग्य पदार्थ देवे, जिस प्रकार पुत्रके लिये माता (पयः) दूध देती है ॥

जिस भूमिको अश्विनी-देवों (वेगवान् ज्ञानियों) ने मापा है, विष्णुने जिसमें विविध पराक्रम किये हैं और कर्मकुशल प्रज्ञाशील इन्द्र अर्थात् नरेन्द्रोंने जिसको शत्रुरहित किया है अर्थात् जिसके शत्रुओंको भगाया है, वह हमारी मातृभूमि हमें सब भोग और ऐश्वर्य देवे ॥ १० ॥

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु ।
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम् ॥
अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम् ॥ ११ ॥

हे (पृथिवि) मातृभूमि ! (ते) तेरे (गिरयः) पहाड, (हिमवन्त पर्वताः) हिमवाले पर्वत और (अरण्यम्) वन हमारे लिये (स्योनं) सुख देनेवाला (अस्तु) होवे । (बभ्रुं) भरण-पोषण करनेवाली, (कृष्णां कृषित होनेवाली, (रोहिणीं) जिसमें वृक्षादि बढते हैं ऐसी, (विश्व-रूपां) सब प्रकारकी (इन्द्रगुप्तां) वीरोंसे रक्षित (ध्रुवां) गतिके कारण स्थिर और (पृथिवीं) विस्तृत (भूमिं) मातृभूमिका (अहं) मैं (अ-जीतः)

अपराजित, (अहतः) न मारा जाकर, (अक्षतः) व्रणादि रोगसे रहित होकर (अध्यष्ठां) अधिष्ठाता-अध्यक्ष- होता हूं ।

हमारी मातृभूमिके पर्वत, पहाड, वन और अरण्य तथा सब अन्य स्थान हमारे लिये सुखदायी हों। हमारी मातृभूमि अनेक प्रकारके धान्यादिकी उत्पत्ति करनेके कारण हमारा उत्तम पोषण कर रही है । इसलिये मैं नीरोग, बलवान् और विजयी होकर यहांका अध्यक्ष और अधिष्ठाता होता हूं ॥११॥

ता नः प्रजाः सं दुह्रतां समग्रा ।
वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम् ॥१६॥

(ताः) वे (समग्राः) सब (नः प्रजाः) हमारी प्रजायें (सं) मिल-कर (दुन्हतां) पूर्णता प्राप्त करें। हे (पृथिवि) मातृभूमि ! (वाचो मधु) वाणी की मीठास (मह्यं) मुझको (धेहि) दे ।

हे मातृभूमि ! हमारेमेंसे प्रत्येकके अन्दर वाणीकी मधुरता रहे, इस मधुर-तासे हम सब प्रजाजन संघशक्तिसे प्रभावशाली बनकर संपूर्ण रीतिसे पूर्णता संपादन करेंगे ।

चाणक्य-सूत्राणि ।

१ हितमपि अधनस्य वाक्यं न गृह्यते-- धनहीनका हितकारक उपदेश भी स्वीकारा नहीं जाता ।

२ अधनः स्वभार्ययाऽप्यवमन्यते- निर्धन मनुष्यका अपमान उसकी पत्नी भी करती है ।

३ पुष्पहीनं सहकारमपि नोपासते भ्रमराः-- पुष्पहीन आम्र-वृक्षपर भ्रमर नहीं बैठते ।

४ विद्या धनं अधनानाम्-- निर्धन मनुष्योंका धन विद्या है ।

५ विद्या चोरैरपि न ग्राह्या--विद्या चोरोंद्वारा भी चुराई नहीं जाती ।

पाठ ११

भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतम् ।
भूम्यां मनुष्या जिन्वन्ति स्वधयाऽन्नेन मर्त्याः ।
सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु ॥२२॥

(भूम्यां) हमारी मातृभूमिमें (देवेभ्यः) अग्न्यादि देवोंके लिये (अरं-कृतं) सुसंस्कृत किये हुए (हव्यं) हवनीय पदार्थोंका (यज्ञं) यज्ञ (ददति) करते हैं। इसी (भूम्यां) भूमिपर (मर्त्याः मनुष्याः) मरण धर्म-वाले मनुष्य (स्व-धया) अपनी धारणाशक्तिसे और अन्नसे (जिन्वन्ति) जीवित रहते हैं। इस प्रकारकी (सा) वह (नः पृथिवी भूमिः) हमारी विस्तृत मातृभूमि हमारे लिये (प्राणं) प्राणका बल, (आयुः) दीर्घ आयुः (दधातु) देवे और (मा) मुझे (जरदष्टिं) वृद्ध अर्थात् अति दीर्घ आयुसे युक्त (कृणोतु) करे ॥

जिस भूमिमें देवोंके प्रीत्यर्थ यज्ञयाग और इष्टियां करते हैं और जहां सब मनुष्य उत्तम अन्नका भोग करके अपनी निज धारणा-शक्तिसे उन्नत होते रहते हैं, वह हमारी मातृभूमि हमारे लिये आयु, आरोग्य और दीर्घ जीवन तथा बल देवे ॥२२॥

शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता ।
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ॥ २३ ॥

(शिला) शिला (अश्मा) पत्थर तथा (पांसु) धूलिरूप यह (भूमिः) मातृभूमि है। (सा) उसका (सं-धृता) उत्तम रीतिसे धारण होनेपर ही वह (धृता) सुसंरक्षित होती है (तस्यै) उस (हिरण्य-वक्षसे) अपने अन्दर सुवर्ण धारण करनेवाली (पृथिव्यै) मातृभूमिके लिये मैं (नमः) नमन (अकरं) करता हूं ॥

जिसमें मिट्टी, पत्थर, शिला आदि हैं, और सोना चांदी आदि खनिज पदार्थ भी विपुल हैं वह हमारी मातृभूमि है । इसका प्रथम मंत्रोक्त आठ गुणोंसे उत्तम प्रकार धारण होनेसेही इसकी स्वतंत्रताकी रक्षा होती है। इसलिये इस प्रकारकी वंदनीय मातृभूमिके लिये मेरा प्रणाम है ॥२६॥

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा ।
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि ॥ २७ ॥

(यस्यां) जिसमें (वानस्पत्या वृक्षा) वनस्पतियां और वृक्ष (विश्वहा) सदा (ध्रुवाः) स्थिर (तिष्ठन्ति) रहते हैं। उस (विश्व-धायसं) सबको धारण करनेवाली और जिसका हमने (धृतां) धारण किया है ऐसी (पृथिवीं) मातृभूमिका (अच्छ आवदामसि) हम स्वागत करते हैं ।

जिस हमारी मातृभूमिमें वृक्ष, वनस्पतियां और विविध औषधियां सदा फूलतीं और फलतीं हैं, जो हम सबका धारण कर रही है और हम सब (प्रथम मंत्रोक्त आठ गुणोंके द्वारा) जिसका धारण कर रहे हैं, अर्थात् जिसकी स्वतंत्रताकी रक्षा कर रहे हैं, उस वंदनीय मातृभूमिका हम सब स्वागत करते हैं ॥२७॥

उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः ।
पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् ॥२८॥

(उदीराणाः) उठते हुए, (उत आसीनाः) और बैठे हुए, (तिष्ठन्तः) खडे होते हुए, तथा (प्र-क्रामन्तः) चलते फिरते और दौडते हुए (दक्षिण-सव्याभ्यां) सीधे और बांएं (पद्भ्यां) पांवोंसे (भूम्यां) भूमिमें (मा व्यथिष्महि) न कष्ट उत्पन्न करें ॥

हमारी हरएक प्रकारकी हलचल कष्ट उत्पन्न करनेवाली न हो ॥२८॥

विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम् ।
ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाऽभि नि षीदेम भूमे ॥२९॥

(वि-मृग्वरीं) विशेष खोज करनेके योग्य, (ब्रह्मणा) ज्ञानसे जिसकी (वावृधानां) वृद्धि होती है, (ऊर्जं) बलकारक (पुष्टं) पुष्टिकारक (घृतं अन्नभागं) घी और अन्न आदि भोग्य पदार्थ (बिभ्रतीं) धारण करनेवाली, (क्षमां) निवास करनेयोग्य (पृथिवीं) विस्तृत (भूमिं) मातृभूमिकी मैं (आ वदामि) प्रार्थना करता हूं कि हे (भूमे) मातृभूमि ! (त्वा) तुझ-पर (अभि नि षीदेम) हम सब बैठे ॥

हमारी भूमि अत्यंत उत्तम है, इसलिये उसकी अनेक प्रकारसे खोज होनी चाहिये। खोज करके उसका अधिकाधिक उपयोग करके अन्नपेयादि भोग्य पदार्थ विशेष प्रकारसे प्राप्त करके हम अपना बल, पुष्टि, शक्ति और अन्य प्रकारका तेज बढायेंगे और अधिक विस्तृत प्रदेश प्राप्त करके आनंदसे बढेंगे ॥२९॥

शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये तं नि दध्मः ।
पवित्रेण पृथिवि मोत् पुनामि ॥ ३० ॥

हे (पृथिवि) मातृभूमि ! (शुद्धाः आपः) शुद्ध निर्मल जल (नः तन्वे) हमारे शरीरके लिये (क्षरन्तु) बहता रहे । (यः) जो (नः सेदुः) हमारा नाश करनेका यत्न करेगा (तं) उस दुष्टको हम (अ-प्रिये) अप्रियतामें (नि-दध्मः) रखेंगे । मैं (मां) अपने आपको (पवित्रेण) पवित्रतासे (उत् पुनामि) उत्तम पवित्रता करता हूं ॥

हमें सदा शुद्ध जल प्राप्त होता रहे और जल आदिसे हमारे शरीर पवित्र होते रहें। हम शुद्ध, सरल और श्रेष्ठ आचार और विचारोंसे अपने आपको सदा पवित्र बनायेंगे और जो शत्रु हमारा नाश करनेका यत्न करेगा उसको हम योग्य दण्ड देंगे ॥३०॥

— —